© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Education

वर्तमान समय में उपनिषदों की प्रासंगिकता

डॉ० प्राची केसरी
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

भारतीय–संस्कृति की प्राचीनतम एंव अनुपम धरोहर के रूप में वेदों का नाम आता है। मनीषियों ने वेद को ईश्वरीय बोध अथवा ज्ञान के रूप में पहचाना है। विद्वानों ने उपनिषदों को वेदों का अन्तिम भाष्य **वेदान्त** का नाम दिया है।

उपनिषद् शब्द **उप** और **नि** उपसर्ग तथा **सद्** धातु के संयोग से बना है। **सद्** धातु का प्रयोग गति अर्थात् गमन ज्ञान और प्राप्ति के सन्दर्भ में होता है। इसका अर्थ यह है कि जिस विद्या से परब्रह्म अर्थात् ईश्वर का सामीप्य प्राप्त हो उसके साथ तादात्म्य स्थापित हो वह विद्या **उपनिषद्** कहलाती है।

उपनिषद् में सद् धातु के तीन अर्थ और भी है– विनाश, गति अर्थात् ज्ञान– प्राप्ति और शिथिल करना। इस प्रकार उपनिषद् का अर्थ हुआ– जो ज्ञान पाप का नाश करे, सच्चा ज्ञान प्राप्त कराये, आत्मा के रहस्य को समझाये तथा अज्ञान को शिथिल करे, वह उपनिषद् है। उपनिषद् शब्द को परोक्ष या रहस्य के अर्थ प्रयुक्त किया गया है।[1]

उपनिषदों में भारतीय–जीवन और संस्कृति की धार्मिक आस्थाओं का तत्त्व ज्ञान भरा पङा है। आध्यात्मिक ज्ञान के विविध स्त्रोत, निर्मल निर्झणी की भाँति इनके भीतर से प्रस्फुटित होते हुए दिखाई पङते है। जन–जीवन को सुसंस्कृत और परिष्कृत करने के लिए इनका अभ्युदय हुआ है। भारतीय संस्कृत के आध्यात्मिक स्वरूप का सच्चा और सहज ज्ञान इन उपनिषदों से प्राप्त होता है।

विश्व के प्रत्येक कोने में इनका प्रकाश फेला है। सभी ने मुक्त कण्ठ से इनकी प्रशंसा की है। इनके उदात्त स्वरूप को पहचाना है। इनके उच्चतम, पवित्रतम, एकान्तिक और लोकहितकारी ज्ञान की महिमा को मण्डित किया है। इन्हें जीवन मरण के भय से युक्त करने वाला कहा है और सच्ची आत्मिक शक्ति देने वाला स्वीकार किया है।

भारतीय दर्शन की सभी धाराओं के सारतत्त्व में उपनिषद् विद्यमान है। सत्य की खोज अथवा ब्रह्म की पहचान इन उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय है। जन्म और मृत्यु से पहले और बाद में हम कहाँ थे और कहाँ जायेंगे, इस

सम्पूर्ण सृष्टि का नियन्ता कौन है, यह चराचर जगत् किसकी इच्छा से परिचालित हो रहा है तथा हमारा उसके साथ क्या सम्बन्ध है– इन सभी जिज्ञासाओं का शमन उपनिषदों के द्वारा ही सम्भव हो सका है।

उपनिषदों का मुख्य उद्देश्य मनुष्य जाति को आत्मतत्त्व अथवा ब्रह्मज्ञान से परिचित कराना है। यह ब्रह्मज्ञान ही उसे जन्म–मरण के चक्र से छुटकारा दिलाकर मोक्ष की ओर ले जाता है। इस ज्ञान के द्वारा ही हम जान पाते है कि जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में भी है। यह पिण्ड हमारा शरीर है जो नश्वर है, परन्तु इसमें जो जीवनी–शक्ति विद्यमान है, वह आत्मा है। यह आत्मा नित्य है और इसे नष्ट नहीं किया जा सकता है। यह आत्मा ही ब्रह्माण्ड में व्याप्त परमात्मा का अंश है। जन्म के समय यह आत्मा ही उस परमात्मा से विलग होकर शरीर में प्रवेश करता है और मृत्यु के उपरान्त पुनः उसी परमात्मा की दिव्य ज्योति में विलीन हो जाता है। आवागमन का यह चक्र जिस पल रूक जाता है, वही पल मोक्ष का पल होता है। जीवात्मा सदैव ही इस आवागमन के चक्र से मुक्त होना चाहता है। उसका यह प्रयास ही परमात्मा के साथ योग कहलाता है, अन्यथा अपने कर्मों के अनुसार उसे बार–बार इस नश्वर जगत में आना पङता है और अनेक कष्टों को भोगना पङता है।

वह परमात्मा, जीवात्मा के रूप में प्रत्येक प्राणी में निवास करता है। आत्म–साक्षात्कार द्वारा कोई भी उसके साथ निकटता स्थापित कर सकता है, परन्तु मायावी प्रपञ् में पङकर वह बार–बार आवागमन के चक्र में पङकर भटकता रहता है। इस भौतिक शरीर और संसार के प्रति उसकी आसक्ति ,उसे परमात्मा से मिलने नहीं देती उसकी एकाग्रता हर क्षण मन की चञ्चलता से भंग होती रहती है और वह परमात्मा के संसर्ग से दूर बना रहता है।

मन की चंचलता और शरीर की भौतिक इच्छाओं से परे आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता है। उसके साथ साक्षात्कार करके ही जीव परमात्मा का सहवास प्राप्त कर सकता है, पर इसके लिए अन्तर्मुखी प्रक्रिया की साधना करनी पङती है।

उपनिषद् लौकिक एंव अलौकिक विभूतियों की प्राप्ति के उपाय बताने वाले है और उन दिव्य विभूतियों का सदुपयोग कैसे किया जाए? ब्रहा, जीव और प्रकृति का सम्पूर्ण विकास–क्रम तथा जीव के पुनः ब्रह्म में लीन हो जाने की प्रक्रिया का पक्ष उपनिषदों में मिल जाता है। यहाँ गूढ से गूढ विषय को समझने की तीव्र उत्कण्ठा साधक में देखी जा सकती है। विषय में आत्मसात हो जाने की ललक दिखाई पङती है तथा अभिव्यक्ति अत्यन्त सहज और प्रभावशाली है।

उपनिषदों में आत्मतत्त्व का प्रत्यक्ष अनुभव करना ही ऋषियों का अभीष्ट रहा है। वहाँ बौद्धिक ज्ञान की सीमा को अपर्याप्त समझा गया। छान्दोग्योपनिषद् में श्वेतकेतु स्वंय इसे स्वीकार करते है, कि उन्होंने वेद आदि का तो अध्ययन किया है, परन्तु वे अभी तक उस अनुभूति को नहीं प्राप्त कर सके हैं , जिसके द्वारा सुना–अनसुना और अनजाना भी सुना और समझा जा सके।

उपनिषद् इसी आत्मतत्त्व तक पहुँचने की साधनात्मक यात्रा है। वृहदारण्यकोपनिषद्[2] में कहा गया है कि ब्रह्मा ने अपने आप को जाना, तो वह सर्व हो गया और देवता, ऋषि तथा मनुष्य ने उसे जाना, तो वे तदूप (उसी के समान)हो गये। ईशावास्योपनिषद् में ऋषि यहीं अनुभव करते है।[3]

इस प्रकार सर्वत्र एक ही परम पुण्य की चेतना को देखने वाले ऋषि उसे कल्याणकर्त्ता के रूप में देखते हैं और उसके तेजस्वी स्वरूप में स्वंय भी आत्मसात होकर वैसे ही बन जाते हैं कि वे किसी जाति–भेद ,वर्ग–भेद और लिंग–भेद में बंधना स्वीकार नहीं करते है।

वृहदारण्यकोपनिषद[4] में ऋषि स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य के चारों वर्ण ब्रह्म के ही रूप हैं। ये चारों रूप परमात्मा के द्वारा विभिन्न कर्म करने के लिए ही निश्चित किये गये हैं। वर्ण भेद के बहाने, जाति–भेद अथवा जातिवाद आदि विषयों के लिए उपनिषदों में कोई स्थान नही हैं।

उपनिषद् में आत्मा की सर्वव्यापकता ही परम लक्ष्य है। उसी के आधार पर प्राणिमात्र के लिए विकास के समान अवसर उपलब्ध कराना तथा जीवात्मा के प्रति प्रेम–भावना का प्रसार करना उनका अभीष्ट है।

उपनिषदों में कर्मकाण्ड और उसकी फलश्रुतियों का उल्लेख भी कहीं–कहीं प्राप्त होता है, परन्तु वे वहीं तक सीमित नहीं रह जाते। उपनिषदों के ऋषि कर्मकाण्ड के स्थूल रूप को भेदकर उसके मर्म तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। वे कर्मकाण्ड को आत्मनिग्रह का आधार मानते हैं।

सन्दर्भः–

1–अष्टाध्यायी 1/4/79
2–वृहदारण्यकोननिषद् 1/4/10
3–तेजो यत्ते रूपम् कल्याणतमं तत्ते
पश्यामि योऽसावसौ पुरूषः सोऽहमस्मि।
4–वृहदारण्यकोननिषद् 1/4/11–15